डॉ० धर्मचन्द जैन, प्रोफेसर
संस्कृत-विभाग, जयनारायण व्यास
विश्वविद्यालय, जोधपुर

अर्द्धमागधी आगम-साहित्य में अस्तिकाय

अस्तिकाय

'अस्तिकाय' जैन दर्शन का विशिष्ट पारिभाषिक शब्द है, जो लोक या जगत् के स्वरूप का निर्धारण करता है। अस्तिकाय का निरूपण एवं विवेचन शौरसेनी, अर्द्धमागधी एवं संस्कृत भाषा में रचित आगम-ग्रन्थों, सूत्रों, टीकाओं एवं प्रकारण ग्रन्थों में विस्तार से समुपलब्ध है, किन्तु प्रस्तुत लेख में अर्द्धमागधी आगमों में निरूपित पंचास्तिकाय पर विचार करना ही समभिप्रेत है। अर्द्धमागधी भाषा में निबद्ध आगम श्वेताम्बर परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं। दिगम्बर परम्परा इन्हें मान्य नहीं करती। उनके षट्खण्डागम, कसायपाहुड, समयसार, नियमसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकायसंग्रह आदि ग्रन्थ शौरसेनी प्राकृत भाषा में निबद्ध हैं। अर्द्धमागधी आगमों में मुख्यत: व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र, प्रज्ञापना सूत्र, जीवाजीवाभिगम सूत्र, समवायांग, स्थानांग, उत्तराध्ययन आदि आगमों में पंचास्तिकाय एवं षड् द्रव्यों का निरूपण सम्प्राप्त होता है। इसिभासियाइं ग्रन्थ भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है।[१]

अस्तिकाय पाँच हैं[२]- १. धर्मास्तिकाय २. अधर्मास्तिकाय ३. आकाशस्तिकाय ४. जीवास्तिकाय और ५. पुद्गलास्तिकाय। द्रव्य को ६ प्रकार का प्रतिपादित करते समय अद्धासमय (काल) को भी पंचास्तिकाय के साथ जोड़कर निरूपित किया जाता है।[३] अस्तिकाय एवं द्रव्य दो भिन्न शब्द हैं, अत: इनके अर्थ में भी कुछ भेद होना चाहिये। अस्तिकाय द्रव्य है, किन्तु मात्र अस्तिकाय नहीं है।

'अस्तिकाय' (अत्थिकाय) शब्द का विवेचन करते हुए आगम टीकाकार अभयदेव सूरि ने कहा है- **अस्तीत्ययं त्रिकालवचनो निपात:, अभूवन् भवन्ति भविष्यनित चेति भावना। अतोऽस्ति च ते प्रदेशानां कायाश्च राशय इति-अस्तिकाया:।** 'अस्ति' शब्द त्रिकाल का वाचक निपात है, अर्थात् 'अस्ति' से भूतकाल, वर्तमान एवं भविष्यत् तीनों में रहने वाले पदार्थों का ग्रहण हो जाता है। 'काय' शब्द राशि या समूह का वाचक है। जो कार्य अर्थात् राशि तीनों कालों में रहे वह अस्तिकाय है। अस्तिकाय की एक अन्य व्युत्पत्ति में अस्ति का अर्थ प्रदेश करते हुए प्रदेशों की राशि या प्रदेश समूह को अस्तिकाय कहा गया है- **अस्तिशब्देन प्रदेशप्रदेशा: क्वचिदुच्यन्ते, ततश्च तेषां वा काया: अस्तिकाया:।** इस अस्तिकाय के द्वारा सम्पूर्ण जगत् की व्याख्या हो जाती है। 'अस्तिकाय' को व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र के आधार पर स्पष्टरूपेण समझा जा सकता है। वहाँ पर तीर्थंकर महावीर से उनके प्रमुख शिष्य गौतम गणधर ने जो संवाद किया, वह इस प्रकार है[४]-

प्रश्न - भंते! क्या धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को 'धर्मास्तिकाय' कहा जा सकता है?

उत्तर - गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। (अर्थात् धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को धर्मास्तिकाय नहीं कहा जा सकता)

प्रश्न - भन्ते! क्या धर्मास्तिकाय के दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस, संख्यात और असंख्यात प्रदेशों को 'धर्मास्तिकाय' कहा जा सकता है?

उत्तर - गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्रश्न - भन्ते! एक प्रदेश न्यून धर्मास्तिकाय को क्या 'धर्मास्तिकाय' कहा जा सकता है?

उत्तर - गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्रश्न - भन्ते! किस कारण से ऐसा कहा जाता है?

उत्तर - गौतम! जिस प्रकार चक्र के खण्ड को चक्र नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहते, किन्तु सम्पूर्ण को चक्र कहते हैं, इसी प्रकार गौतम! धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को धर्मास्तिकाय नहीं कहा जा सकता है यावत् एक प्रदेश न्यून तक को भी धर्मास्तिकाय नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न - भन्ते! फिर धर्मास्तिकाय किसे कहा जा सकता है?

उत्तर - गौतम! धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं, जब वे कृत्सन, परिपूर्ण, निरवशेष एक के ग्रहण से सब ग्रहण हो जाएँ, तब गौतम! उसे धर्मास्तिकाय कहा जाता है।

धर्मास्तिकाय की भाँति व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र में अधर्मास्तिकाय, आकाशस्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय का भी अखण्ड स्वरूप में अस्तिकायत्व स्वीकार किया गया है। यह अवश्य है कि जहां धर्मास्तिकाय एवं अधर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं वहां आकाशस्तिकाय, जीवस्तिकाय एवं पुद्गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेश हैं।[५] इसका तात्पर्य है कि जिस प्रकार धर्मास्तिकाय के अन्तर्गत निरवशेष असंख्यात प्रदेशों का ग्रहण होता है, उसी प्रकार अधर्मास्तिकाय आदि के भी अपने समस्त प्रदेशों का उस अस्तिकाय में ग्रहण होता है। एक प्रदेश भी न्यून होने पर उसे तत् तत् अस्तिकाय नहीं कहा जाता।

अस्तिकाय का द्रव्य से भेद

अस्तिकाय का द्रव्य से यही भेद है कि अस्तिकाय में जहाँ धर्मास्तिकाय आदि के अखण्ड निरवशेष स्वरूप का ग्रहण होता है, वहाँ धर्मद्रव्य आदि में उसके अंश का भी ग्रहण हो जाता है। परमार्थतः धर्मास्तिकाय अखण्ड द्रव्य है, उसके अंश नहीं होते हैं। अतः पुद्गलास्तिकाय कहलायेगा तथा टेबल, कुर्सी, पेन, पुस्तक, मकान आदि पुद्गल द्रव्य कहलायेंगे, पुद्गलास्तिकाय नहीं। टेबल आदि पुद्गल तो हैं, किन्तु पुद्गलास्तिकाय नहीं। क्योंकि इनमें समस्त पुद्गलों का ग्रहण नहीं होता है। अतः टेबल, कुर्सी आदि को पुद्गल द्रव्य कहना उपयुक्त है। इसी प्रकार जीवास्तिकाय में समस्त जीवों का ग्रहण हो जाता है, उसमें कोई भी जीव छूटता नहीं है, जबकि अलग-अलग, एक-एक जीव भी जीव द्रव्य कहे जा सकते हैं। यह अस्तिकाय एवं द्रव्य का सूक्ष्म भेद आगमों में सन्निहित है। काल को द्रव्य तो स्वीकार किया गया है, किन्तु उसका कोई अखण्ड स्वरूप नहीं है, उसमें प्रदेशों का प्रचय भी नहीं है, अतः वह अस्तिकाय नहीं है।

'द्रव्य' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा जाता है– **द्रवति तांस्तान् पर्यायान् गच्छति इति द्रव्यम्।** जो प्रतिक्षण विभिन्न पर्यायों को प्राप्त होता है, वह द्रव्य है। अस्तिकाय पाँच ही हैं, जबकि द्रव्य छह हैं। व्याख्याप्रज्ञप्ति के द्वितीय शतक में पाँचों अस्तिकाय का पाँच द्वारों से वर्णन किया गया है- द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से और गुण से।[६] द्रव्य से वर्णन करते हुए धर्मास्तिकाय को एक द्रव्य, अधर्मास्तिकाय को एक द्रव्य आकाशास्तिकाय को एक द्रव्य तथा जीवास्तिकाय एवं पुद्गलास्तिकाय को क्रमशः अनन्त जीवद्रव्य एवं अनन्त पुद्गल प्रतिपादित किया गया है। इसका तात्पर्य है कि 'अस्तिकाय' जहाँ तीनों कालों में रहने वाली अखण्ड प्रचयात्मक राशि का बोधक है, वहाँ द्रव्य शब्द के द्वारा उस अस्तिकाय के खण्डों का भी ग्रहण हो जाता है। इनमें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय एवं अकाशास्तिकाय तो अखण्ड ही रहते हैं, उनके कल्पित खण्ड ही हो सकते हैं, वास्तविक नहीं, जबकि जीवास्तिकाय में अनन्त जीव द्रव्य और पुद्गलास्तिकाय में अनन्त पुद्गल द्रव्य अपने अस्तिकाय के खण्ड होकर भी अपने आप में स्वतन्त्र रूप से अस्तित्व में रहते हैं। नाम से वे सभी जीव जीवद्रव्य एवं सभी पुद्गल पुद्गलद्रव्य कहे जाते हैं।

अनुयोगद्वार सूत्र में द्रव्य नाम छह प्रकार का प्रतिपादित है- १. धर्मास्तिकाय २. अधर्मास्तिकाय ३. आकाशास्तिकाय ४. जीवास्तिकाय ५. पुद्गलास्तिकाय और ६. अद्धासमय (काल)[७]

पुद्गलास्तिकाय के एक प्रदेश अर्थात् परमाणु को कथंचित् द्रव्य, कथंचित् द्रव्यदेश कहा गया है। इसी प्रकार दो प्रदेशों को कथंचित् द्रव्य, कथंचित् द्रव्यदेश, कथंचित् अनेक द्रव्य और अनेक द्रव्यदेश कहा गया है। इसी प्रकार तीन, चार, पाँच यावत् असंख्यात एवं अनन्त प्रदेशों के संबंध में कथन करते हुए उन्हें एक द्रव्य एवं द्रव्यदेश, अनेक द्रव्य एवं अनेक द्रव्यदेश कहा गया है।[८]

पाँच अस्तिकायों में आकाश सबका आधार है। आकाश ही अन्य अस्तिकायों को स्थान देता है। आकाशस्तिकाय लोक एवं अलोक में व्याप्त है, जबकि अन्य चार अस्तिकाय लोकव्यापी हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय से पूरा लोक स्पृष्ट है।[९]

द्रव्य का विभाजन आगामों में षड्द्रव्यों के अतिरिक्त जीव एवं अजीव के रूप में भी किया गया है, यथा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कइविहा णं भंते! दव्वा पण्णत्ता?

गोयमा दुविहा दव्वा पण्णत्ता, तं जहा-जीवदव्वा य जीवदव्वा य।[१०]

भगवन्! द्रव्य कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं– जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य।

व्याख्याप्रज्ञप्ति में अजीव द्रव्यों को पुनः रूपी अजीव द्रव्य एवं अरूपी अजीव द्रव्य में विभक्त किया जाता है।

प्रज्ञापना सूत्र में अरूपी अजीव द्रव्य की १० पर्याय एवं रूपी अजीव द्रव्य की ४ पर्याय निरूपित हैं। अरूपी अजीव द्रव्य की १० पर्याय हैं[११]–१. धर्मास्तिकाय २. धर्मास्तिकाय के देश ३. धर्मास्तिकाय के प्रदेश, ४. अधर्मास्तिकाय ५. अधर्मास्तिकाय के देश ६. अधर्मास्तिकाय के प्रदेश ७. आकाशास्तिकाय ८. आकाशस्तिकाय के देश ९. आकाशास्तिकाय के प्रदेश और १०. अद्धासमय। अरूपी से तात्पर्य है वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्श से रहित। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय एवं काल द्रव्य वर्णादि से रहित होने के कारण अरूपी हैं। रूपी द्रव्य एक ही है- पुद्गलास्तिकाय। इसके चार पर्याय हैं- स्कन्ध, स्कन्धदेश, स्कन्ध प्रदेश और परमाणु पुद्गल। पुद्गल का स्वतन्त्र खण्ड स्कन्ध, उसका कल्पित अंश देश एवं उसका परमाणु जितना कल्पित अंश प्रदेश कहा जाता है। परमाणु पुद्गल स्वतंत्र है। देश एवं प्रदेश के धर्मास्तिकाय आदि अरूपी द्रव्यों में भी कल्पित अंश एवं परमाणु जितने कल्पित अंश ही वाच्य हैं।

रूपी अजीव द्रव्य की अनन्त पर्यायों का भी प्रतिपादन हुआ है। गौतम गणधर के प्रश्न के उत्तर में प्रज्ञापना सूत्र में भगवान महावीर ने स्पष्ट किया है- गौतम! परमाणु पुद्गल अनन्त हैं, द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं, यावत् दशप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं, संख्यात प्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं, असंख्यात प्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं, अनन्त प्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं। इस कारण है गौतम! ऐसा कहा जाता है कि रूपी अजीव पर्याय संख्यात और असंख्यात नहीं है, किन्तु अनन्त हैं।[१२]

जीवद्रव्य की भी अनन्त पर्याय स्वीकृत हैं। इसका कारण प्रतिपादित करते हुए कहा गया है- असंख्यात नैरयिक हैं, असंख्यात् असुरकुमार यावत् असंख्यात स्तनित कुमार हैं, असंख्यात पृथ्वीकायिक हैं, असंख्यात अपकायिक हैं, असंख्यात् तेजस्कायिक हैं, असंख्यात वायुकायिक हैं, अनन्त वनस्पतिकायिक हैं, असंख्यात द्वीन्द्रिय हैं, असंख्यात त्रीन्द्रिय है, असंख्यात् चतुरिन्द्रिय हैं, असंख्यात् पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक हैं, असंख्यात मनुष्य हैं, असंख्यात वाणव्यन्तर हैं, असंख्यात ज्योतिष्क देव हैं, असंख्यात वैमानिक देव हैं, अनन्त सिद्ध हैं। इस प्रकार हे गौतम! जीवपर्याय संख्यात और असंख्यात नहीं, किन्तु अनन्त हैं।[१३]

धर्मास्तिकाय गति परिणाम वाले जीव और पुद्गलों की गति में सहायक होता है। अधर्मास्तिकाय स्थिति परिणाम वाले जीव और पुद्गलों की स्थिति में सहकारी होता है। आकाशास्तिकाय अन्य सभी द्रव्यों/अस्तिकायों को स्थान/अवकाश देता है। जीवास्तिकाय चेतनागुण या उपयोगगुण वाला होता है। पुद्गलास्तिकाय वर्ण, गंध रस एवं स्पर्श वाला होता है। शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान भेद, अंधकार, छाया, आतप, उद्योत वाले द्रव्य भी पुद्गल होते हैं। काल वर्तना लक्षण वाला है।[१४]

इनमें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय एवं पुद्गलास्तिकाय अजीवकाय हैं तथा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय एवं जीवास्तिकाय अरूपीकाय हैं, क्योंकि इनमें वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्श नहीं हैं। प्रदेश की अपेक्षा धर्म, अधर्म एवं एक जीव द्रव्य में असंख्यात प्रदेश माने गए हैं तथा आकाश में अनन्त प्रदेश कहे गए हैं। पुद्गल में संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश हैं। पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी होकर भी अनेक स्कन्ध रूप बहु प्रदेशों को ग्रहण करने की योग्यता रखता है। गुरुलघुत्व की अपेक्षा से पुद्गलास्तिकाय गुरुलघु भी है और अगुरुलघु भी, किन्तु धर्मास्तिकाय आदि शेष चार अगुरुलघु हैं।

षड्द्रव्यों में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय द्रव्य की दृष्टि से तुल्य हैं तथा षड्द्रव्यों में सबसे अल्प हैं। उनसे जीवास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं, उनसे पुद्गलास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं। उनसे अद्धासमय द्रव्य की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं।[१५]

संख्या का यह निर्देश इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि अस्तिकाय एवं द्रव्य में भिन्नता है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय एवं आकाशास्तिकाय में द्रव्य एवं अस्तिकाय की दृष्टि से समानता हैं, क्योंकि वे अस्तिकाय की दृष्टि से भी एक-एक हैं तथा द्रव्य की दृष्टि से भी एक-एक हैं। जीवास्तिकाय को द्रष्ट की दृष्टि से धर्मास्तिकाय की अपेक्षा अनन्तगुणा कहा गया है। इसका तात्पर्य है कि प्रत्येक जीव एक भिन्न द्रव्य है इसलिए उन्हें अनन्तगुणा कहा गया है। पुद्गलास्तिकाय को तो द्रव्य की दृष्टि से जीव से भी अनन्तुणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिपादित किया गया है। इसका कारण परमाणु को भी द्रव्य के रूप में समझना है।

उपर्युक्त विवेचन से यह फलित होता है कि जात्यपेक्षया तो द्रव्य छह ही हैं, किन्तु व्यक्त्यपेक्षया द्रव्य अनन्त हैं। प्रत्येक वस्तु अपने आपमें एक द्रव्य है। जो भी स्वतन्त्र अस्तित्ववान् वस्तु है वह द्रव्य है। इसीलिए द्रव्यापेक्षया जीव भी अनन्त हैं और पुद्गल भी अनन्त। काल को तो पुद्गल की अपेक्षा भी अनन्तगुणा स्वीकार किया गया है।

तात्पर्य यह है कि अस्तिकाय एवं द्रव्य का स्वरूप पृथक् है। अस्तिकाय तो द्रव्य है, किन्तु जो द्रव्य है वह अस्तिकाय हो, यह आवश्यक नहीं।

धर्मास्तिकाय आदि अमूर्त द्रव्य आकाश में एक साथ रहते हुए भी एक-दूसरे को बाधित या प्रतिहत नहीं करते। ये किसी न किसी रूप में एक-दूसरे के सहकारी बनते हैं। यथा- धर्मास्तिकाय से जीवों में आगमन, गमन, भाषा, उन्मेष, मनोयोग, वचनयोग और काययोग प्रवृत्त होते हैं। अधर्मास्तिकाय से जीवों में स्थित होना, बैठना मन की एकाग्रता आदि कार्य होते हैं। आकाशास्तिकाय जीव एवं अजीव द्रव्यों का भाजन या आश्रय है। एक या दो परमाणुओं से व्याप्त आकाशप्रदेश में सौ परमाणु भी समा सकते हैं तथा सौ परमाणुओं से व्याप्त आकाश प्रदेश में सौ करोड़ परमाणु भी समा सकते हैं। जीवास्तिकाय से जीवों में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्यायज्ञान, केवलज्ञान, मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंग ज्ञान, चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन की अनन्त पर्यायों के उपयोग की प्राप्ति होती है। पुद्गलास्तिकाय से जीवों को औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस व कार्मण शरीर, श्रोत्रेन्द्रिय आदि इन्द्रियाँ, मनोयोग, वचनयोग, काययोग और श्वासोच्छ्वास को ग्रहण करने की प्रवृत्ति होती है।[१६]

भगवतीसूत्र के बीसवें शतक में धर्मास्तिकाय आदि के अनेक अभिवचन (पर्यायवाची शब्द) दिए गए हैं, जिनसे इनका विशिष्ट स्वरूप प्रकाश में आता है। उदाहरणार्थ धर्मास्तिकाय के अभिवचन हैं- धर्म या धर्मास्तिकाय, प्राणातिपात-विरमण यावत् परिग्रह-विरमण, क्रोध-विवेक यावत् मिथ्यादर्शनशल्य-विवेक, ईर्या समिति यावत् उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिघाण-परिष्ठापनिका समिति, मनोगुप्ति यावत् कायगुप्ति। धर्मास्तिकाय के ये अभिवचन उसे धर्म के निकट ले आते हैं। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के अधर्म, प्राणातिपात अविरमण यावत् परिग्रह-अविरमण, क्रोध-अविवेक यावत् मिथ्यादर्शनशल्य अविवेक आदि अभिवचन अधर्मास्तिकाय को अधर्म पाप के निकट ले जाते हैं। आकाशास्तिकाय के गगन, नभ, सम, विषम आदि अनेक अभिवचन हैं। जीवास्तिकाय के अभिवचनों में जीव, प्राण, भूत, सत्त्व, चेता, आत्मा आदि के साथ पुद्गल को भी लिया गया है, जो यह सिद्ध करता है कि पुद्गल शब्द का प्रयोग प्राचीन काल में जीव के लिए भी होता रहा है। पुद्गलास्तिकाय के अनेक अभिवचन हैं, यथा-पुद्गल, परमाणु-पुद्गल, द्विप्रदेशी यावत् संख्यात प्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी, अनन्त प्रदेशी आदि।[१७]

काल की द्रव्यता

पंचास्तिकाय के अतिरिक्त काल को द्रव्य मानने के संबंध में जैनाचार्यों में मतभेद रहा है। इस मतभेद का उल्लेख तत्वार्थसूत्रकार उमास्वाति ने 'कालश्चेत्येके' सूत्र के द्वारा किया है। आगम में भी दोनों प्रकार की मान्यता के बीज उपलब्ध होते हैं। उदाहरणार्थ भगवान महावीर से प्रश्न किया गया- किमिदं भंते! काले त्ति पवुच्चति? भगवन्! काल किसे कहा गया है? भगवान ने उत्तर दिया- जीवा चेव अजीवा चेव त्ति। अर्थात् जीव और अजीव कहा गया है। इसका तात्पर्य है कि काल जीव और अजीव की पर्याय ही है, भिन्न द्रव्य नहीं। यह कथन एक अपेक्षा से समीचीन है। 'लोकप्रकाश' नामक ग्रन्थ में उपाध्याय विनयविजय जी ने इस आगम वाक्य के आधार पर तर्क उपस्थित किया है कि वर्तना आदि पर्यायों को यदि द्रव्य माना गया तो अनवस्था दोष आ जायेगा। पर्यायरूप काल पृथक द्रव्य नहीं बन सकता है।[१८] आगम में क्योंकि 'अद्धासमय' के रूप में काल द्रव्य का विवेचन प्राप्त होता है, अत: लोकप्रकाश में एतदर्थ तर्क उपस्थापित करते हुए कहा है–

१. लोक में नानाविध ऋतुभेद प्राप्त होता है, उसके पीछे कोई कारण होना चाहिये और वह काल है।[१९]

२. आम्र आदि वृक्ष अन्य समस्त कारणों के उपस्थित होने पर भी फल से वंचित रहते हैं। वे नानाशक्ति से समन्वित कालद्रव्य की अपेक्षा रखते हैं।[२०]

३. वर्तमान, अतीत एवं भविष्य का नामकरण भी काल द्रव्य के बिना संभव नहीं हो सकेगा तथा काल के बिना पदार्थों को पृथक-पृथक नहीं जाना जा सकेगा।[२१]

४. क्षिप्र, चिर, युगपद्, मास, वर्ष, युग आदि शब्द भी काल की सिद्धि करते हैं।[२२]

५. काल को षष्ठ द्रव्य के रूप में आगम में भी निरूपित किया गया है, यथा- **कइ णं भंते! दव्वा? गोयमा। छ दव्वा पण्णत्ता, तं जहाधम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए,**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए, अद्धासमए य।[२३]

इस प्रकार आगम और युक्तियों से काल पृथक द्रव्य के रूप में सिद्ध है। वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व काल के उपकार हैं। द्रव्य का होना ही वर्तना, उसका विभिन्न पर्यायों में परिणमन, परिणाम, देशान्तर प्राप्ति आदि क्रिया, ज्येष्ठ होना परत्व तथा कनिष्ठ होना अपरत्व है। काल को परमार्थ और व्यवहार काल के रूप में दो प्रकार का प्रतिपादित किया जाता है।

जैन प्रतिपादन का वैशिष्ट्य

पंचास्तिकायात्मक या षड्द्रव्यात्मक जगत् का प्रतिपादन जैन आगम् वाङ्मय का महत्वपूर्ण प्रतिपादन है। जीव एवं पुद्गल अथवा जड़ एवं चेतन का अनुभव तो हमें होता ही है, किन्तु इनमें गति एवं स्थिति भी देखी जाती है। गति एवं स्थिति में सहायक उदासीन निमित्त के रूप में क्रमशः धर्मास्तिकाय एवं अधर्मास्तिकाय की स्वीकृति और उसका जीव एवं पुद्गल के कारण लोकव्यापित्व स्वीकार करना संगत ही प्रतीत होता है। इन सबके आश्रय हेतु आकाशास्तिकाय का प्रतिपादन अपरिहार्य था। आकाश को लोक तक सीमित न मानकर उसे अलोक में भी स्वीकार किया गया है, क्योंकि लोक के बाहर रिक्त स्थान आकाशस्वरूप ही हो सकता है। पंचास्तिकाय के साथ पर्याय परिणमन के हेतु रूप में काल को मान्यता देना भी जैन-परम्परा को आवश्यक प्रतीत हुआ। इसलिए षड् द्रव्यों की मान्यता साकार हो गई।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि धर्मास्तिकाय एवं अधर्मास्तिकाय जैन दर्शन का अपना वैशिष्ट्य है। इनका अन्य किसी भारतीय दर्शन में निरूपण नहीं हुआ है। यद्यपि सांख्यदर्शन में मान्य प्रकृति के रजोगुण से धर्मद्रव्य का तथा तमोगुण से अधर्मद्रव्य का साम्य प्रतीत होता है, किन्तु जैन दर्शन में धर्मास्तिकाय एवं अधर्मास्तिकाय स्वतन्त्र द्रव्य हैं, जबकि सांख्य में ये प्रकृति के स्वरूप हैं। दूसरी बात यह है कि धर्म एवं अधर्म द्रव्य लोकव्यापी हैं और तीसरी बात यह है कि सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण मिलकर कार्य करते हैं, जबकि जैनदर्शन में ये दोनों स्वतंत्ररूपेण कार्य में सहायक बनते हैं।

आकाश को द्रव्य रूप में प्रायः सभी दर्शनों ने स्वीकार किया है, किन्तु आकाश के लोकाकाश और अलोकाकाश भेद जैनेतर दर्शनों में प्राप्त नहीं होते। न्याय, वैशेषिक, वेदान्त सांख्य, आदि दर्शनों में 'शब्द' को आकाश द्रव्य का गुण माना गया है 'शब्दगुणकमाकाशम्' जबकि जैनदर्शन में आकाश का गुण अवगाहन करना माना गया है। शब्द को तो पुद्गल द्रव्य में सम्मिलित किया गया है।

वैशेषिक दर्शन में पृथ्वी, अप्, तेजस् वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन को द्रव्य माना जाता है। इनमें से आकाश, काल एवं आत्मा को तो पृथक् द्रव्य के रूप में जैन दार्शनिकों ने भी अंगीकार किया है, किन्तु पृथ्वी, अप्, तेजस् एवं वायु की पृथक् द्रव्यता मानने का जैनदर्शनानुसार कोई औचित्य नहीं है, क्योंकि वे सजीव होने पर जीव द्रव्य में और निर्जीव होने पर पुद्गल द्रव्य में समाहित हो जाते हैं। दिशा कोई पृथक् द्रव्य नहीं है वह तो 'आकाश' की ही पर्याय है। मन को जैन दार्शनिकों ने पुद्गल में सम्मिलित किया है।

आगमों में पुद्गलास्तिकाय एवं जीवास्तिकाय का विस्तार से निरूपण मिलता है। पुद्गल द्रव्य में 'परमाणु' का विवेचन महत्वपूर्ण है। परमाणु पुद्गल की सबसे छोटी स्वतंत्र इकाई है। परमाणु का जैसा वर्णन आगमों में उपलब्ध होता है वह आश्चर्यजनक है। एक परमाणु दूसरे परमाणु से आकार में तुल्य होकर भी वर्ण, गंध रस एवं स्पर्श में भिन्न होता है। कोई काला, कोई नीला आदि वर्ण का होता है। कोई एक गुण काला, कोई द्विगुण काला आदि होने से भी उनमें भेद होता है।

परमाणु की अस्पृशद्गति अद्भुत है। इस गति के कारण परमाणु एक समय में लोक के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँच सकता है।[२४]

जैन दर्शन के ग्रन्थों में आगे चलकर 'अस्तिकाय' के स्थान पर द्रव्य शब्द का ही प्रयोग हो गया तथा वस्तु या सत् की व्याख्या 'द्रव्यपर्यायात्मक' स्वरूप से की जाने लगी। किन्तु आगमों में अस्तिकाय एवं द्रव्य के स्वरूप में किंचित भेद रहा है।

संदर्भ

१. *चउव्विहे लोए वियाहिते : दव्वतो लोए, खेत्तओ लोए, कालओ लोए, भावओ लोए। -इसिभासियाइं, ३१वाँ अध्ययन*

२. *गोयमा! पंच अत्थिकाया पण्णत्ता, तं जहा-धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए, पोगलत्थिकाए। -व्याख्याप्रज्ञप्ति शतक २, उद्देशक १०, सूत्र १*

३. *से किं तं दव्वाणमे? दव्वणामे छव्विहे पण्णत्ते, तंजहा-धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए,*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए, अद्धासमए य। अनुयोगद्वार सूत्र, २१८

४. द्रष्टव्य, व्याख्याप्रज्ञप्ति, शतक २, उद्देश्यक १०, सूत्र ७-८

५. णवरं पएसा अणंता भवियव्वा। -वही

६. वही, सूत्र २-६

७. अनुयोगद्वार सूत्र २१८

८. व्याख्याप्रज्ञप्ति, शतक, ८, उद्देशक १०, सूत्र २३-२४

९. स्थानांग सूत्र, स्थान ४, उद्देशक ३

१०. व्याख्याप्रज्ञप्ति, शतक २५, उद्देशक २

११. प्रज्ञापना सूत्र, पद ५, सूत्र ५००-५०३

१२. वही, सूत्र ५०४

१३. वही, सूत्र ४३८-४३९

१४. गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो।
भायणं सव्वदव्वाणं, नहं ओगाहलक्खणं।
वत्तणा लक्खणो कालो, जीवो उवओगलक्खणो।
नाणेण दंसणेण च सुहेण दुहेण य।।
सद्दंधयार उज्जोओ, पभा छायातवे इ वा।
वण्णरसगंधफासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं।।-उत्तराध्ययन सूत्र २८.९-१२

१५. प्रज्ञापना सूत्र, पद ३ सूत्र २७०

१६. व्याख्याप्रज्ञप्ति शतक १३, उद्देशक ४, सूत्र २४-२८

१७. व्याख्याप्रज्ञप्ति शतक २०, उद्देशक २, सूत्र ४-८

१८. अत्र द्रव्याभेदवर्ति-नवर्तनादिविवक्षया।
कालोऽपि वर्तनाद्यात्मा जीवाजीवतयोदितः।
पर्यायाणां हि द्रव्यत्वेऽनवस्थापि प्रसज्यते।
पर्यायरूपस्तत्कालः पृथग् द्रव्यं न संभवेत।। -
लोकप्रकाश, सर्ग २८, श्लोक १३ व १५

१९. लोकप्रकाश २८.४७

२०. वही २८.४८

२१. वही २८.४९

२२. वही २८.५३

२३. लोकप्रकाश २८.५५ के पश्चात्

२४. व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र

■

कंचन कांकरिया

धर्म का सही स्वरूप

उत्तराध्ययन सूत्र के आठवें 'कापिलीय' अध्ययन में एक जिज्ञासु ने पूछा कि –

अधुवे आसासयम्मि, संसारम्मि दुक्खपउराए।
किं णाम होज्ज तं कम्मयं, जेणाहं दुग्गइं ण गच्छेज्जा।।

अर्थात् इस अस्थिर, अशाश्वत और प्रचुर दुःखमय संसार में ऐसा कौन-सा कर्म है जिसके फलस्वरूप मैं दुर्गति में न जाऊँ? इस अध्ययन की १८ गाथाओं में बड़े ही सुन्दर ढ़ंग से धर्म का स्वरूप समझाते हुए विशुद्ध प्रज्ञा वाले कपिल केवली ने कहा कि जो केवली प्ररूपित दया धर्म का पालन करते हैं, वे संसार सागर से तिर जाते हैं। इस धर्म का पालन करने वालों ने ही इस लोक-परलोक को सफल किया है और करेंगे।

कई जिज्ञासु प्रश्न करते हैं कि इस लोक और परलोक को सुखी बनाने के लिए पौषध प्रतिक्रमणादि कष्टकारी क्रियाएँ क्यों करें? भावों को शुद्ध कर लेंगे हमारी मुक्ति हो जायेगी। बंधुओं हर साधक माता मरुदेवी या भरत चक्रवर्ती जैसा नहीं बन सकता इसीलिए महामुनिश्वर भगवान महावीर ने सामायिक पौषध प्रतिक्रमणादि करने का उपदेश दिया है। प्रभु महावीर के बताये हुए सारे नियम राग द्वेष की प्रवृत्तियों को वश में करने के लिए ही हैं। जैन धर्म में साधना की जो पद्धतियाँ बतलाई गई हैं वे इतनी सुन्दर और बेजोड़ हैं कि उनके द्वारा हम शीघ्र ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। इन पवित्र क्रियाओं में जब तक मन जुड़ा रहेगा तब तक अपवित्र विचार मन में नहीं आएँगे, सावद्य भाषा नहीं बोली जायेगी तथा काया से भी छह काया के जीवों की रक्षा होगी। इसीलिए ज्ञानी महात्मा कहते हैं कि धार्मिक क्रियाओं को छा जाने दो जीवन के हर एक क्षण पर, एकमेक हो जाने दो शरीर की एक-एक क्रियाओं पर तो कषायों पर शालीन हो जायेगी।

धार्मिक क्रियाओं का महत्व समझ में आ जाये तो इसमें बहुत मन लगता है और एक अद्भुत अलौकिक आनंद की प्राप्ति होती है कि इन क्रियाओं के माध्यम से अनंतानंत जीवों को अभयदान प्रदान किया है जिसके फलस्वरूप कर्मों के पुंज के पुंज नष्ट हो रहे हैं। धार्मिक क्रियाओं का फल तत्काल दिखाई नहीं दे तो भी विश्वास क्रियाओं का फल तत्काल दिखाई नहीं दे तो भी विश्वास रखो उसका फल अवश्य मिलता है क्योंकि ये सर्वांगीण विकास की जड़ है। इनका स्वाध्याय आदि से सिंचन किया जाये तो इसकी शान्ति का दूसरा कोई फल तीन लोक में नहीं है।

तीर्थंकरों को तीर्थंकर बनाने वाली, गणधरों को गणधर बनाने वाली, आचार्यों को आचार्य बनाने वाली यह धर्म करणी ही है। अंतःकरण से धार्मिक क्रियाओं को करने वाला इस लोक में भी आनंद और शांति में रमण करने के कारण सुखी होता है और परलोक में भी सुखी रहता है क्योंकि मोक्ष मार्ग पर चलने वाला रास्ते में भी कहीं विश्राम करता है तो उत्तम स्थान यानी वैमानिक में ही करता है। इसलिए हमें दया, संवर, सामायिक, पौषधादि करके हमें अपनी घड़ियों को सफल करना है। ■

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org